प्रागैतिहासिक चित्रकला भारतीय एवं वैश्विक परिदृश्य

मनोज कुमार
शोधार्थी
ललित कला विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ
ईमेलः manojsirji01@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

मनोज कुमार

प्रागैतिहासिक चित्रकला भारतीय एवं वैश्विक परिदृश्य

Artistic Narration 2022, Vol. XIII, No. 2, Article No. 20 pp. 132-139

https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-2022-vol-xiii-no2

सारांश

प्रागैतिहासिक चित्रकला इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता के विकास का इतिहास प्रागैतिहासिक शब्द के तीन अर्थ स्पष्ट रूप से सामने आते हैं जिन्हें विविध विद्वानों ने व्यवहारिक रूप से ग्रहण किया है तथा जो केवल सैद्धान्तिक स्तर तक ही सीमित नहीं कहे जा सकते–

1) जोनिश्चित रूप से, इतिहास–काल की निर्धारक विशेषता साक्षरता के आविर्भाव से पूर्व युग का हो।

2) जो आद्यैतिहासिक काल का न होकर भी पूर्ण तथा निश्चित स्थिति न रखता हो तथा जिसमें इतिहास जैसी परिचायात्मक निकटता, सर्वांगीणता एवं सुसम्बद्वता न मिले।

3) जो ऐतिहासिक युग में अस्तित्व रखकर भी परम्परा, प्रकृति स्थिति एवं वातावरण से प्रागैतिहासिक युग का हो अधिक प्रतिनिधित्व करता हो। तथा समय के साथ–साथ ज्यों–ज्यों मानव ने विकास किया, भारत में भी अपने उत्कर्स को प्राप्त करती रही। वस्तुतः भारतीय चित्रकला की प्रधानता को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है। विश्व में उसकी एक विशिष्ट पहचान है। प्रागैतिहासिक मानव ने किस प्रकार अपनी संस्कृति सभ्यता, भाव और विचारों का विकास किया इसके बहुत से तथ्य आज प्रकाश में आ चुकें है।

प्रस्तावना

ज्ञान की किसी भी दिशा में प्रवेश करने वाले को यह बोध होना नितान्त स्वभाविक है कि ज्ञात की अपेक्षा अज्ञात अथवा अल्पजात की सत्ता अधिक होती है। जिस प्रकार एक नक्षत्र को सूक्ष्म रीति से देखने पर अगणित नक्षत्र स्वतः दिखायी दे जाते है, उसी प्रकार एक वस्तु के अध्ययन से यह सहज ही प्रतीत होने लगता है कि अनेक वस्तुएँ अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं। इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि ज्ञात की आकांक्षा रखने वाले एक मात्र प्राणी 'मनुष्य' की ज्ञान–पिपासा अदम्य है और उसके साधन समय–सापेक्ष एवं सीमित हैं। दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि जिस अन्तर्वाहा सत्ता की वस्तुगत प्रकृति को जानने के लिए वह प्रवृत्त होना, वह दोनों सिरों पर अछोर और अनन्त है बह्मा द्वारा अपनी कमल–नाल के मूल को खोजने की निष्फलता का उद्घोष करने वाली पौराणिक कथा प्रतीकात्मक रीति से इसी तथ्य का उद्घाटन करती है। तीसरा एक और अनुपेक्षणीय कारण यह भी है कि मनुष्य ज्ञानार्जन के प्रसंग में वस्तु–जगत् को ऐसे देखता है जैसे वह स्वयं उसका अंग न होकर मात्र द्रष्टा होः परन्तु वस्तु सत्य यह है कि किसी भी अवस्था में वह सृष्टि से अपने को तत्वतः पृथक नही कर सकता। पूर्ण ज्ञान, के बिना पूर्ण आत्मिक एकीकरण के सम्भव नही है; इससे यही निष्कर्ष निकलता है। परन्तु यह दिशा, दर्शन और अध्यात्म की दिशा है जिसमें इतिहास की अति सीमित कालात्मक धारणा प्रायः निरर्थक हो जाती है। इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टि कदाचित् भिन्न दार्शनिक चेतना के कारण वैसी नही रही जैसी पाश्चात्य एवं इतर देशों में पायी जाती है; विशेषतया आधुनिक युग में। व्यवहारतः आज भारत ने निश्चित तिथि मूलक इतिहास की पाश्चात्य धारण को न केवल स्वीकार कर लिया है वरत् इस क्षेत्र में उसकी सक्रीयता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, भले ही इतिहास–दर्शन ने इतिहास की बहुविध व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हुए उसकी तिथि मूलक और घटना मूलक धारण के सीमा चिह्ननयी दृष्टि से निर्दिष्ट कर दिए हों। इतिहास वस्तुतः अनेक स्त्रोतों से अर्जित एक ऐसा ज्ञात है जो वर्तमान में उपलब्ध प्रमाणों एवं तथ्यों के आधार पर वर्तमान युग के ही व्यक्तियों द्वारा प्रत्यभिज्ञान मूलक कल्पना के सहारे प्रत्यक्ष किया जाता है। अतीत की कल्पना का आधार किसी न किसी रूप में वर्तमान मे ही निहित रहता है। वर्तमान से विच्छिन्न करके न अतीत की कल्पना की जा सकती है न भविष्य की, क्योकि काल अन्ततः एक अखण्ड और समग्रता का बोधक प्रतयय है जिसकी सत्ता सचेतन मनुष्य को ही प्रतीत होती है।

इतिहास, पुरातत्व और नृतत्व शास्त्र आदि की सीमा के भीतर जाकर जब हम मानव का अतीत देखने की चेष्टा करते है तो हमें यही बोध प्राप्त होता है कि ज्ञात की अपेक्षा अज्ञात कही अधिक है। इतिहास के क्षेत्र में इसको व्यक्त करने के लिए उसे स्वयं दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है–

1. प्रागितिहास (Prehistory)

2. इतिहास (History)

एक तीसरा मध्यवर्ती विभाजन भी अवमान्यता प्राप्त कर चुका है

3. आद्यैतिहास (Protohistory)

आद्यैतिहास शब्द के स्थान पर 'पुरा इतिहास' और 'मूल इतिहास' आदि शब्दों का भी व्यवहार हुआ है पर उससे मूल धारणा में कोई अन्तर नही आता।

इतिहास का समारंभ कहाँ से माना जाये, इस सम्बन्ध में कई दृष्टिकोण मिलते हैं। कुछ लोग वर्तमान समय से वहाँ तक के–काल–विस्तार को इतिहास के अन्तर्गत मानते हैं। जहाँ तक विविध घटनाओं की निश्चित निथियाँ प्राप्त होती है। अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा सी दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का आरम्भ ई0पू0 327–26 से माना जाता रहा क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण की यही तिथि प्रमाणिक रीति से ज्ञात हो सकी थी। वह भी भारतीय स्त्रोत से नही, ग्रीक स्त्रोत से। किन्तु निश्चित तिथियॉ तभी प्राप्त हो सकती है। जब उनका लेखा रखने के लिए अतीत में कोई माध्यम अपनाया गया हो। यह माध्यम मुख्यतया लिपि है जिसके अभाव में तिथियों का अनुलेखन सर्वथा असम्भव है। ग्रेहम क्लार्क ने पुरातत्व और समाज विषयक अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि प्रगैतिहासिक काल की नितान्त आरम्भिक अवस्था में मानव–समाज और पशु–समाज के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा खींच पाना कठिन है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से रचना की स्पष्ट परम्परा का संकेत करने वाले पाषाणास्त्रों के निर्मा से लेकर जहाँ तक सामाजिक विकास मे अक्षर–ज्ञान का समावेश नही मिलता, वहाँ तक प्रागेतिहासिकता की सीमा मानी जा सकती है और जहाँ से सुसम्बद्व लेखा प्राप्त होने लगता है, वहाँ से इतिहास कहे जाने वाले काल का आरम्भ स्वीकार किया या प्रागितिहास की ऐसी कोई निश्चित सीमा निर्धारित करना सम्भव रही है, जो सर्वमान्य हो सके।

'प्रिहिस्टॉरिक इंडिया' के लेखक स्टुअर्ट पिगॉट ने व्यापकतम अर्थ ग्रहण करते हुए पुरापाषाण काल से लेकर ईस्वी सन् के निकट के तथा कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक के सारे काल–विस्तार को लगभग इसी आधार पर 'प्रागेहासिक' शब्द के अन्तर्गत समाष्टि कर लिया है। उनके अनुसार भारतीय प्रागेहासिक युग की शोध और उसकी व्याख्या उन्ही विधियों के अनुसार होनी चाहिए जो लेखबद्व इतिहास से पूर्व के मानव–विकास का अध्ययन करने के लिए योरोप में प्रयुक्त की गयी।

'ऐन्शिएन्ट इण्डिया' में इतिहास के प्रसंग को आरम्भ करते समय जो भूमिका दी गयी है, उसमें स्वभावतः भारतीय इतिहास के समारम्भ की समस्या को उठाया गया है और व्यावहारिक निदान के रूम में ईस्वी सन् की प्रथम सहस्त्राव्दी के मध्य भाग को विभाजक रेखा के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि अनुमानतः इसी के लगभग देश लौह–युग में प्रवेश करता है तथा उसके विशाल भूभागों में सभ्यता के कतिपय सुनिश्चित लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं। उस लिपि का जिससे भारत की वर्तमान लिपियों का उद्भव हुआ है, व्यवहार या तो

प्रारम्भ हो चुका था या होने वाला था और यह ऐसा समय भी था जब ज्ञात तिथि की एक महत्वपूर्ण घटना–बुद्व का आविर्भाव–घटित होती है। 'प्रिहिस्टॉरिक वैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन कल्चर' में डी0 एच0 गॉर्डन ने भी इसी विभाजक रेखा को मान्यता प्रदान की है।

प्रागेतिहासिक शब्द की मर्यादा एवं व्याप्ति की जो समस्या मेरे सामने है, वह 'प्रिहिस्टॉरिक पेन्टिंग' के लेखन ऐलन हॉटनबॉड्रिक के सामने सन् 1948 में ही आ चुकी थी। उन्होंने जिस रूप में उसका समाधान, अपने कार्य के निमित किया, वह मुझे संगत और व्यावहारिक लगता है। इतिहास के पूर्वोक्त त्रिधा विभाजन को उन्होने सुविधाजन्य और अधिकांशः परम्परागत घोषित करते हुए मानव–विकास की समग्र कथा को एक अखंड इकाई के रूप में ग्रहण किया है जैसा कि ज्ञान के निरन्तर परिवर्धन के साथ प्रतीक होता जाता है। उनके अनुसार बिना किसी व्यवधान के प्रागितिहास आद्यैतिहास में अन्तर्भुक्त हो जाता है और आद्यैतिहास इतिहास मे, फिर हमारे लिए आद्यैतिहास और इतिहास के भी समारम्भ की कोई ऐसी तिथियॉ निर्धारित करना सम्भव नही है जो भूमण्डल के समस्त क्षेत्रों के लिए मान्य हो सके।

1. प्रागेहिासिक मानव और संस्कृतियॉ, भूमिका, पृष्ठ 16 2.
2. (i) इंडियन ऑकियालॉजी टुडे, पृष्ठ 26–28.
3. (ii) प्रिहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटाहिस्ट्री इन इंडिया ऐण्ड पाकिस्तान–भूमिका, पृष्ठ 9–10.

The division of Man's Story into three sections has been made for convenience, and such division, it must be admitted, are largely conventional. The more we learn the better we see that the whole long story Man is one. Without any break, prehistory merges in to protohistory, and protoistory in to history. Moreover, we can set for the beginings of protohistory, and, indeed, of history, no dates which will be valid for all areas of the earth's surface

कहा जा सकता है कि किसी भी असभ्य जाति का 'इतिहास' नही होता और हम सभ्यता की परिभाषा एक ऐसी जीवन–प्रणाली के रूप में कर सकते हैं जिसका परिजान लेखन की किसी विधि के प्रकाश में होता है, विशेषताः ऐसे लेखन से जो साहित्यिक रचना के लिए प्रयुक्त होता रहा हो। अतएव यदि यह निष्कर्ष निकाला जाय कि 'लेखन के बिना कोई सभ्यता सभ्यता नही होती' तो इतिहास का आरम्भ अधिक से अधिक तीन सहस्त्राब्दी ई0पू0 तक ले जाया जा सकता है जैसे इजिप्ट आदि देशों के सम्बन्ध मे सत्य है। जिस लेखन को सभ्यता और इतिहास दोनों की परिभाषा का आधार माना जा रहा है वह डिरिंजर आदि अनेक लिपि विशेषज्ञों की मान्यता क अनुसार वास्तव में मलतः चित्रकला की परम्परा से ही विकसित हुआ है। अतः मेरे विचार से यदि लेखन के स्थान पर चित्रण (आलेखन) को आधार भूत तत्व मान लिया जाये तो सभ्यता और इतिहास दोनों की धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित होगा। साथ–साथ दोनों की पूर्व–सीमा का अपेक्षित परिविस्तार भी हो जायेगा। योरोपीय प्रागेतिहासिक

कला को आदिम न मानने वाले मैक्स राफायल जैसे तत्वदर्शी विद्वानों का मत निश्चय ही इसके पक्ष में होगा। किन्तु सभ्यता का तात्पर्य जब तक मानसिक विकास एवं कला–चेतना के स्थान पर स्थूल तथा बाह्य उपकरणों से लिया जाता रहेगा, तब तक इतिहास की परिधि संकुचित ही बनी रहेगी। ऐतिहासिक निश्चयात्मकता का एकमात्र आधार तिथि–ज्ञान ही नही होना चाहिए। अन्य वस्तुएँ भी निश्चयात्मक निष्कर्ष निकालने में सहायक हो सकती है।

आद्यैतिहास के विषय में ब्रॉड्रिक का मत है कि वह इतिहास की तुलना में कम निश्चयार्थक है और इतिहास से सामान्यता इसी अर्थ में भिन्न समझा जाता है कि उसके अन्तर्गत लेखन का अस्तित्व नही रहता। शेष जीवन–प्रणासी, जो उस कालखण्ड के अन्तर्गत आती है, जिसका परिज्ञान हमें पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर स्पष्टतया हो जाता है, इतिहास–काल के समारंभ की जीवन–प्रणाली से सार रूप में भिन्नता नही रखती। इस दृष्टि

1. We may say that no uncivilized people has a history. And we may define vivilization as a way of life illuminated and informed by some method by some method of writing and, moreover, by some method of writing which is employed in literary composition. If, therefore, we adopt the criterion "No civilization without writing", we shall fix that beginnings of history at rather after than before 3000 B.C.

कोण से स्पष्ट है कि बॉड्रिक आद्यैतिहास को प्रागितिहास की अपेक्षा इतिहास के अधि निकट मानने के पक्ष में है। इसमें आयेतिहास के उस पक्ष पर विशेष बल दिया गया है जो इतिहास के निकट पड़ता है। पर आगे के प्रतिपादन में लेखन ने उस पक्ष की भी उपेक्षा नही की है जो प्रागतिहास से समीपता रखता है।

ब्रॉडिक की दृष्टि का पैनापन प्रागेतिहासिकता की समस्या के निदान में वहाँ पहुँचकर सबसे अधिक प्रखर हो जाता है, जहाँ वह उसको काल की भूमिका से किंचित् पृथक् स्पष्टतः तात्विक आधार पर प्रस्तुत करने लगते है। कुछ उदाहरण देकर उन्होंने यह प्रतिपदिक करने की चेष्टा की है कि प्रागेतिहासिकता मूलतः कालाश्रित होते हुए भी एक बिन्दु पर पहुँचकर काल–निरपेक्ष हो उठती है। जो वस्तुप्रकृत्या प्रागेतिहासिक युग से सम्बद्ध रही हो, वह इतिहासकाल के भीतर रहकर भी तत्वतः प्रागितिहास का ही बोध कराती है। अफ्रीका में बहुत–सी ऐसी जातियाँ है जो आज बीसवीं सदी में भी नरभक्षी बतायी जाती है। और उनकी जीवन–प्रणाली भी पाषाण–युगी नही है। ऐसी दशा में काल का बन्धन प्रातः निरर्थक हो जाता है क्योंकि उन जातियों को ऐतिहासिक कहने की अपेक्षा प्रागेतिहासिक कहना अधिक संगत प्रतीत होता है। बॉड्रिक का कथन है कि इस प्रकार पूर्व–प्रतिपादन को सार रूप में ग्रहण करने पर निष्कर्ष निकलता है कि स्कैण्डीने वियनकांस्य–युग के शिलांकित उत्कीर्ण–चित्र, या उत्तरी इटली में स्थित कैमोनिका घाटी के लौह–युगीन शिला–चित्र, तुलनात्मक दृष्टि से कम प्राचीन

होते हुए भी प्रागेतिहासिक कहे जा सकते है जबकि इजिप्ट की चित्रकला कई शत्ताब्दियो अधिक पुरानी होकर भी प्रागेतिहासिक न की जाकर बलपूर्वक एतिहासिक ही कही जायेगी।

1. In fact, in those few fegions of the earth where early civilization flourished, we encounter a fairly long protohistoric era. We may also. if we will, call ´protohistoric´ the later phases of the Mental Ages in areas wherein civilization was not invented but where in to it was imported. But all comming before. such rather vaguely defined protohistoric times is caught into the domain of prehistory.

प्रागेतिहासिकता और शिला–चित्र

प्रागेतिहासिक मानव के मनोजगत् का ज्ञान प्रतीकों से भी कही। अधिक निश्चयात्मकता, विषदता एवं सूक्ष्मता के साथ शिला–चित्रों द्वारा प्राप्त होता है और इस दृष्टि से मैं उनको अद्वितीय महत्व देता है। पुरातनता के प्रसाद में मुझे वे उन अगणित रूपायिनगवाक्षों की तरह प्रतीत होते हैं, जिनके माध्यम से अतीत की मानसिकता धरातल पर संस्पंदित और संजीव रूप में प्रत्यक्ष किया जा सकता है जैसा किसी अन्य माध्यम से संभव नही है। कलाकार के नाते मुझे प्रागेतिहासिक चित्र एक ऐसा जीवन्त अनुभव प्रदान करते हैं जो उनमें निहित अप्रतिम कला–चेतना एवं रचना–शक्ति के कारण केवल अतीत का ही बोध नही कराता वरन् उनके अस्तित्व को सीधे आधुनिक युग के कला–सन्दर्भ से जोड़ देता है। किन्तु यह बात व्यक्तिगत और दुसरी दिशा की है। प्रागेतिहासिक चित्रों का महत्व इसी से विदित हो जाता है कि योरोप के प्रागितिहासको मुख्यत या उन्हीं की शोध के आधार पर लगभग तीस–चालीस सहस्त्राब्दियों तक का गौरवपूर्ण परिविस्तार प्राप्त हुआ और कला के क्षेत्र में भी अतुल सांस्कृतिक प्रतिष्ठा उपलब्ध हुई। मनुष्य के भीतर सृजन–शक्ति कितनी पुरातन और कितनी गहराई तक व्याप्त है, इसका जैसा ज्वलंत प्रमाणशिला–चित्रों से प्राप्त होता है, वैसा पाषाणास्त्र आदि अन्य पुरातात्विक उपकरणों से कदापि संभव नही है। अज्ञात–काल की संस्कृति के आभ्यंतरिक स्वरूप का उद्घाटन लिपि के अभाव में एकमात्र कलाकृतियों के द्वारा ही हो पाता जिसमें शिला–चित्रों का स्थान सर्वप्रमुख है। उनके द्वारा गुहावासी मानव की अन्तश्चेतना के प्रवाह का परिचय मिलता है, उसकी संघर्षपूर्ण जीवन–प्रक्रिया तथा विषमतम वातावरण में भी व्यक्त होने वाली मौलिक उदभावना–शक्ति एवं उसके सौंदय–बोध का भी प्रमाण उपलब्ध होता है, जिससे आजतक चले आने वाले कला–चेतना के प्रवाह की अखंडता का बोध होता है। ऐतिहासिक चित्र और समस्त कलात्मक वैभव मिलता है, यदि नही मिलती तो केवल आदिमकला। यह कथन योरोपीय चित्रों के विषय में जितना सटीक है, उतना भारतीय चित्रों के विषय में न भी हो तो भी तात्विक दृष्टि स्पष्ट है। सामाजिक विकास की वर्तमान स्थिति तक आते–आते। मानव–मन के बहुत–से रहस्यमय एवं गूढ सत्य प्रच्छन्न हो गए हैं। अथवा जिनका आभास आज की जटिल–प्रणाली

में कठिनता से हो पाता है, उनकी ओर भी प्रागेतिहासिक चित्रकला सीधा ध्यान आकृष्ट करती है। इस प्रकार मानवीय चेतना को एक अत्यन्त विस्तृत सन्दर्भ प्राप्त होता है तथा उसकी आन्तरिक एकता प्रमाणित होती है।

कुछ विशेषज्ञों में एक धारणा ऐसी भी प्रचलित रही है कि कला और कला–कृतियाँ मनुष्य के सांस्कृतिक इतिहास में मात्र अलंकरण के स्थान पर हैं। इतिहास के रचनात्मक आधार के रूप में उन्हें दर्शन और विज्ञान जैसी महत्ता भी प्राप्त नही होनी चाहिए। सुप्रसिद्व विद्वान् एच0जी0 वेल्स ने एक स्थान पर इसी प्रकार की बात लिखी है। यह विचार वेल्स को कदाचित् अपने गुरू हर्बर्ट स्पेन्सर से प्राप्त हुआ, जिसके पीछे इंग्लैण्ड के संकीर्ण चिंतन की परम्परा ध्वनित होती है। वास्वत में ऐसा सोचना अनुपयुक्त है। कला का स्थान मानव–विकास में किसी भी प्रकार दर्शन और विज्ञान से कम महत्वपूर्ण नही माना जाना चाहिए। कलाकार के 'धर्म' की चर्चा की चर्चा करते हुए विश्व कवि रवीन्दनाथ ठाकुर ने कला की महत्ता को यथोचित रूप में व्यक्त किया है, जिससे एक प्रकार से पूर्वोक्त धारणा का प्रतिवाद हो जाता है। कवि गुरू के अनुसार अमूर्त सत्य भले ही विज्ञान और त्त्वमीमांसा के क्षेत्र से सम्बद्ध हों परन्तु यथार्थ जगत् का सम्बन्ध कला से है। कला में वह यातुक प्रभाव निहित रहता है, जो उस प्रत्येक वस्तु को, जो उसकी परिधि में आ जाती है, एक अमृतत्वमय यथार्थता प्रदान करता है तथा उसे हमारे भीतर निहित व्यक्तित्व से सम्प्रक्त कर देता है। पाश्चात्य कला–विशेषज्ञ हर्बर्टरीड भी वेल्स की धारणा के विरूद्ध कला को अभिव्यक्ति के माध्यम और ज्ञान की दृष्टि से दर्शन और विज्ञान से अधिक प्रामाणिक एवं मूल्यवान मानते हैं। इसमें सन्देह नही कि रवीन्द्र और रीड की दृष्टि मानवीय यथार्थ को अधिक गहराई से देखती है। 'ऑन दि ट्रैक ऑफ प्रिहिस्टॉरिक मैन' के हर्बर्ट कुहू ने धर्म, दर्शन और कला तीनों के उद्भव को प्रागेतिहासिक मानव के आन्तरिक जीवन से सम्बद्ध बताया है।

Artistic productions, unlike philosophical thought and scientific discovry. are the ornaaments and expression rather than the creative substance of history.

1. (i) Abstract truth may belong to science, and metaphysics, but the world of reality belongs to art.

   (ii) I has the magic wand which gives undying reality to all things it touches and relates them to the personal being in us.
2. Art must rather be recognised as the most certain modes of expression which mankind has achieved... Art is a mode of knowledge, and the world of art is a system of knowledge as valuable to man-indeed more valable than the world of philosophy, or thewould of Science.

3. The three realms of the spirituallife, religion, art and philosophy, have their beginnings in that world of prehistoric man.

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्त, डा0 जगदीश. (1967). प्रागैहातिहासिक भारतीय चित्रकला. दिल्ली।
2. प्रताप, डॉ0 (2010). रीता. भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास. जयपुर।
3. गोस्वामी, डा0 प्रेमचन्द. (1997). भारतीय कला के विविध स्वरूप. जयपुर।
4. दास, राय कृष्ण. (1974). भारत की चित्रकला. इलाहाबाद।
5. अग्रवाल, डा0 श्याम बिहारी. (2021). अग्रवाल डा. ज्योति भारतीय चित्रकला का इतिहास. इलाहाबाद।
6. जैन, डॉ0 जिनदास. (1971). भारतीय चित्रकला का आलोचनात्मक अध्ययन. मेरठ।
7. मिश्र, डॉ0 विरेन्द्रनाथ. (1973). भीमबेटिका की गुफाओं को रहस्य. (लेख). 30 सितम्बर।